डॉ. अभिनव दिव्यान्शु

प्राचीन भारत की कुछ प्रमुख व्यापारिक वर्गों, संघों व श्रेणियों की सूचियॉ साहित्य व पुरातत्व में

प्रस्तावना–

प्रस्तुत शोध पत्र में प्राचीन भारतीय व्यापारिक वर्गों पर प्रकाश डाला गया है। यह देखने का प्रयास किया गया है कि 600 ईसा पूर्व बुद्ध काल में व्यापारिक वर्ग कौन कौन से थे। इस शोध पत्र में एक सूची दी गई है जिसके बारे में हमें प्राचीन भारतीय साहित्य से चलता है। यह बात ठीक है कि और भी व्यापारिक लोग हो जिनका उल्लेख हमें नहीं मिलता है परन्तु जिनका उल्लेख है उनकी एक सूची बनाई गई है।

मुख्य विषय–

वास्तव में देखा जाये तो इन व्यापारिक, औद्योगिक, व्यवसायिक व शिल्पियों की संस्थाओं का विकास तो 600 ईसा पूर्व में ही हो गया था तथा अधीतकाल में इन सभी संस्थाओं की संख्या घटती व बढती ही रही। रीज डेविड्स के मत में 18 संघात्मक संस्थाएँ थीं, जिनका उल्लेख जातकों में मिलता है। उन्होंने इसकी सूची अपनी पुस्तक बुद्धिस्ट इन्डिया में दी है। जो निम्न हैं[1]–

---

1 डेविड्स, रीज, तथा डब्ल्यू0 टी0,बुद्धिस्ट इन्डिया, 8 वॉ संस्करण, कलकत्ता,1959.

1. लकड़ी का कार्य करने वाले।
2. धातु का कार्य करने वाले।
3. पत्थर का काम करने वाले।
4. बुनकर।
5. चर्मकार।
6. कलाल।
7. दन्तकार।
8. रत्नकार।
9. धोबी।
10. मछुए।
11. कसाई।
12. शिकारी।
13. रसोइया और हलवाई।
14. नाई और मालिश करने वाले।
15. मालाकार।
16. फूस का काम करने वाले।
17. टोकरी बनाने वाले।
18. चित्रकार।

परन्तु मजुमदार इस सूची से सहमत नहीं हैं। वे 18 की बजाये 27 संघात्मक संगठनों की बात करते हैं तथा ये भी कहते हैं कि यह निश्चित नहीं हैं कि ये 18 संस्थाएँ क्या थीं? ये 18 कोई वास्तविकता नहीं अपितु एक रूढ़िगत परम्परा थी। मजुमदार[2] भी अपनी एक सूची देते हैं, जो निम्न हैं–

1. लकड़ी का काम करने वाले।
2. सोना व चाँदी आदि धातु का काम करने वाले।
3. पत्थर का काम करने वाले।
4. चर्मकार।
5. दन्तकार।
6. ओदयंत्रिक पनचक्की चलाने वाले।
7. बसकर बाँस का काम करने वाले।
8. कसकर ठठेरे।
9. रत्नकार–जौहरी।
10. बुनकर या जुलाहे।
11. कुम्हार।
12. तिल–पिषक या तेली।

[2] मजूमदार, डॉ0 रमेशचन्द्र, '*प्राचीन भारत में संगठित जीवन*', सागर विश्वविद्यालय, सागर,1966,पृष्ठ संख्या–19–20.

13. फूस का काम करने वाले।

14. रंगरेज।

15. चित्रकार।

16. व्यापारी।

17. कृषक।

18. मछुए।

19. कसाई।

20. नाई और मालिश करने वाले।

21. मालाकार।

22. नाविक।

23. चरवाहै।

24. सार्थ सहित व्यापारी।

25. डाकु व लुटेरे।

26. वनआरक्षी जो सार्थों की रक्षा करते थे।

27. महाजन।

जो भी हो यह तो कहा ही जा सकता है कि विभिन्न कालो व स्थानों में इन संस्थाओं की संख्या कोई निश्चित नहीं थीं और पेशे, शिल्प व उद्योगों के बढ़ने के साथ इनकी संख्या भी घटती व बढ़ती रहीं। इन संघात्मक व व्यापारिक संस्थाओं की अपनी मुद्राएँ भी होती थीं, जिनसे उनकी व्यापारिक स्थिति की सूचना मिलती थी। इनके पास अपनी कभी-कभी सेना भी होती थी।

साहित्य में श्रेणीबल शब्द का प्रयोग मिलता है। राजा कभी-कभी इनका प्रयोग भी करता था। ये वे लोग थे जो व्यापार व युद्ध दोनो विषय के सामान बनाते थे। अर्थशास्त्र में सुराष्ट्र व कम्बोज के श्रत्रिय श्रेणियों के उस कर्म का उल्लेख मिलता है। जो व्यापार व युद्धउपजीवी थीं- काम्बोज-सुराष्ट्र-क्षत्रिय-श्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोपजीविन:।[3]

पुरातत्व की ओर से कुछ अभिलेखों में इन व्यापारियों व श्रेणियों का वर्णन मिलता है। जो निम्न हैं [4]-

1. श्रेणी का प्राचीन उल्लेख मथुरा से प्राप्त हुविष्क के 28 वें वर्ष के 106 ई. के लेख में मिलता है। (रा) क-क्षेणीये पुराण-शत् 500(+)50 समितकर श्रेणी (ये

[3] वही, पृष्ठ संख्या-29.

[4] वही, पृष्ठ संख्या-33-36.

च) पुराण–शत 500(+)50 अर्थात राक श्रेणी को 550 पुराण और समितकर श्रेणी को 550 पुराण दिया गया।[5]

2. नासिक लेख 120 ई. में भी वर्णन प्राप्त होता है। जिसमें जुलाहों की श्रेणियों का वर्णन है।
3. नासिक लेख में ही ईश्वरसेन के साथ कुलरिकों या कुम्हारों की श्रेणियों का वर्णन है।
4. जुन्नर के प्रथम लेख में कोणचिक की श्रेणियों का वर्णन है।
5. जुन्नर के द्वितीय लेख में बाँस व पीतल का काम करने वाली श्रेणियों का वर्णन है।
6. जुन्नार के तीसरे लेख में अनाज व्यापारियों का वर्णन है।
7. नागार्जुनीकोंडा के 333 ईसवी के एक लेख में पनिक(पान उगाने व बेचने वाले) व पुवक(मिठाईयाँ बनाने वाले) श्रेणियों का उल्लेख है।

श्रेणियों के पास कुछ कार्य व शक्तियाँ भी थीं जैसे [6]–

1. न्यायालयों में श्रेणी को एक संगठन के रूप में मान्यता प्राप्त थी। विवादों में उसके सदस्य भागीदारी करते थे।
2. श्रणियों को अचल सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त था।

---

5 गुप्त,डॉ0 परमेश्वरीलाल,'*प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख भाग–1*',विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृष्ठ संख्या–159.

6 मजूमदार, डॉ0 रमेशचन्द्र, '*प्राचीन भारत में संगठित जीवन*', सागर विश्वविद्यालय, सागर,1966,पृष्ठ संख्या–56.

3. प्रबन्धन अधिकारी श्रेणी की ओर से ऋण ले सकता था।

4. संगठन की ओर से दान व धर्मकार्य किये जाते थे।

5. कोई भी व्यक्ति अपनी मर्जी से श्रेणी की सदस्यता छोड़ सकता था।

रिचर्ड फिक ने व्यवसाय की आनुवांशिकता, उद्योगों का स्थानीयकरण तथा व्यवसाय प्रमुखों की सामाजिक प्रतिष्ठा को श्रेणियों के उदय का प्रधान कारण माना है।[7]

जैन साहित्य में ऋण चुकाने की निर्धारित अवधि का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है परन्तु ऋण निर्धारित अवधि के लिये निश्चित दिये जाते थे। पाणिनि ने कुछ ऋण का उल्लेख किया है तथा कुछ अन्य ऋणों के बारे में भी पता चलता है। जो निम्न हैं[8]–

1. मासिक– महिने भर के अन्दर चुकाये जाने वाला ऋण।

2. सांवत्सरिक– संवत्सर में चुकाये जाने वाला ऋण।

ऋतुओं के आधार पर भी कुछ ऋणों के नाम ज्ञात होते हैं जैसे[9]–

1. ग्रैष्मक– ग्रीष्म में चुकाये जाने वाला ऋण।

2. कलापक– वर्षा काल या ऋतु में चुकाये जाने वाला ऋण।

---

7 श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र, 'प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति', यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2007, पृष्ठ संख्या–528.

8 जैन, डॉ0 कमल,'*प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन(एक अध्ययन)*',पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1988, पृष्ठ संख्या–159.

9 वही, पृष्ठ संख्या–159.

3. आग्रहायणिक- अग्रहायण में चुकाये जाने वाला ऋण।

4. वासन्तक- वसन्त में चुकाये जाने वाला ऋण।

स्पष्ट है कि इन ब्याज या ऋणों आदि का कार्य धनी, श्रेष्ठी, गाथापति, सार्थवाह व वणिक् ही करते थे और अनुचित लाभ उठाकर लोगों का शोषण भी करते थे। सूत्रकृतांग से ज्ञात होता है कि कई लोग तो पैतृक ऋण से बचने के लिये या उसकी अधिकता से घबराकर कुछ गृहस्थ साधु जीवन अपना लेते थे।[10]

शोध परिणाम-

इस तरह हम देखतें हैं कि 600 ईसा पूर्व बुद्ध काल में व्यापारिक समुदायों का जन्म हो गया था। इन्होनें अपने संगठन भी बना लिए थे। यद्यपि ये जो सूची प्रस्तुत की गई है वह आधुनिक दृष्टिकोण से है और जरूरी नहीं कि ऐसा वर्गीकरण प्राचीन भारतीय इतिहास में हो परन्तु इससे प्राचीन भारतीय इतिहास को समझने में आसानी हो जाती है।

यह भी बात है कि एक व्यक्ति किसान व व्यापारी दोनो हो या कोई दा कर्म की भूमिका निभा रहा हो। हालाकि कई विद्यान इस प्रकार की सूचियों से सहमत नहीं है व इसकी आलोचना भी करतें है। क्योंकि ऐसी सूचियॉ या वर्गीकरण समाज का करना प्राचीन काल में उचित नहीं है क्योंकि ये सभ्यता के शुरूआत की कहानी है। उस

10 वही, पृष्ठ संख्या-159.

जमाने में इतना कार्य का विशिष्टिकरण करना समाज का उचित नहीं है। यह आधुनिक दृष्टि से प्राचीन भारत को देखने का प्रयास है। यही समस्या है परन्तु इससे प्राचीन भारत के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश जरूर पड़ता है।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. डेविड्स, रीज, तथा डब्ल्यू0 टी0,बुद्धिस्ट इन्डिया, 8 वॉ संस्करण, कलकत्ता,1959.
2. मजूमदार, डॉ0 रमेशचन्द्र, 'प्राचीन भारत में संगठित जीवन', सागर विश्वविद्यालय, सागर,1966,पृष्ठ संख्या-19-20.
3. गुप्त,डॉ0 परमेश्वरीलाल,'प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख भाग-1',विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृष्ठ संख्या-159.
4. मजूमदार, डॉ0 रमेशचन्द्र, 'प्राचीन भारत में संगठित जीवन', सागर विश्वविद्यालय, सागर,1966,पृष्ठ संख्या-56.
5. श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र, 'प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति', यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2007, पृष्ठ संख्या-528.
6. जैन, डॉ0 कमल,'प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन(एक अध्ययन)',पाश्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1988, पृष्ठ संख्या-159.
7. नेहरू,जवाहर लाल,'द डिस्कवरी आफ इन्डिया',आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटि प्रेस,दिल्ली, 1994
8. शर्मा रामशरण,'आरंभिक भारत का परिचय',ओरियंट ब्लैकस्वान लिमिटेड लिमिटेड,नई दिल्ली,2009.
9. श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र,'प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कति',यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2007,
10. श्रीमाली,कृष्ण मोहन तथा झा, द्विजेन्द्र नारायण,'प्राचीन भारत का इतिहास', हिंदी माधयम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2007.

11. थपलियाल, डॉ. किरण कुमार व श्रीवास्तव प्रशान्त, वैदिक संस्कृति, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद,2006.
12. शास्त्री,डॉ. के.ए. नीलकंठ,'नंद–मौर्य युगीन भारत',मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली,1998.
13. बाशम,ए. एल.,'द वन्डर दैट वास इन्डिया'अनुवादक, वेंकटेशचन्द्र पाण्डेय'अदभुत भारत', शिवलाल अग्रवाल एन्ड कम्पनी, आगरा.
14. मुखर्जी,राधाकुमुद,'चंद्रगुप्त मौर्य और उसका काल'राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,1990.
15. थापर रोमिला,'अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन',ग्रन्थ शिल्पी(इंडिया)Çाइवेट लिमिटेड, दिल्ली,2005.